लैंगिक भेदभाव एवं शिक्षा जगत की विडम्बना

नवीन सिंह

शोधार्थीएपी-एच.डी(हिन्दी)

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

सारांश

शिक्षा किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की रीढ़ होती है। अगर किसी भवन निर्माण में कोई गड़बड़ी उत्पन्न हो तो वह थोड़े बहुत नुकसान के साथ ठीक किया जा सकता है किंतु यदि शिक्षा में किसी प्रकार की विसंगति उत्पन्न हो जाए तो समाज को जो नुकसान होगा उसकी भरपाई असंभव हो जाती है। इसलिए किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहां के योग्य नागरिकों के कारण होती है और उन नागरिकों के निर्माण की जिम्मेदारी विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक की होती है। यदि योग्य और समर्पित शिक्षक हों तो एक अच्छा विश्वविद्यालय भौतिक साधनों और ढांचों के अभाव में पेड़ों की छाया में चलाया जा सकता है। लेकिन बहुत अधिक भवन व सुविधाएं होने के बाद यदि योग्य शिक्षक न हों तो वह निर्जीव स्थल ही बने रहेंगे।

प्रस्तावना

शिक्षक समाज का निर्माता होता है। उसकी दृष्टि में सभी छात्र एक समान होते हैं। एक शिक्षक संपूर्ण समाज का होता है और उसे किसी भी प्रकार के बंधन यथा राजनैतिक दलए संप्रदाय व वर्ण इत्यादि की सीमाएं नहीं स्वीकार करनी चाहिए। अध्यापन एक व्यवसाय नहीं है। अपितु एक बड़ी जिम्मेदारी भी है। लेकिन जब कोई शिक्षक अपनी जिम्मेदारी के प्रति लापरवाह हो जाता है तब वह समाज का बहुत नुकसान करता है। ‘अपवित्र आख्यान’ उपन्यास में जमील को मुसलमान होने के कारण संस्कृत पढ़ने से रोका जाता है। जब वह अपने अध्यापक से कारण पूछता है तब वे निरुत्तर हो जाते हैं। मुसलमान होने के कारण प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा में पहुंचने तक जमील को हिंदी पढ़ने-पढ़ाने से भी समाज को आपत्ति होती रहती है। सिद्दीकी जैसे शिक्षक तथाकथित नीची जाति के मुसलमान छात्रों से नफरत करते हैं। इस बदहाली का कारण प्राध्यापकों की नियुक्ति प्रक्रिया में निष्पक्षता व पारदर्शिता का अभाव भी है। जमील जैसे योग्य शिक्षकों के स्थान पर यासमीन जैसी अयोग्य पात्र सिफारिश और चापलूसी के बल पर शिक्षक हो जाती है। प्रो. शुक्ला

जैसे रिश्तेदारों को उनके जीजा जी प्रो. चतुर्वेदी नियुक्त करवाते हैं। इसी तरह के भ्रष्टाचारों की वजह से शिक्षा व्यवस्था खासकर हिंदी विभागों की, बदतर हो रही है। प्रो. चतुर्वेदी विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष होते हैं। मानविकी विभागों में होने वाले भेदभाव और भ्रष्टाचार के कारण ही लोगों में यह आम धारणा भी सुनने को मिल जाती है कि प्रतिभाशाली लोग समाज विज्ञान व साहित्य नहीं पढ़ते।

शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियाँ

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में शिक्षण संस्थानों को धर्म विशेष से संबंधित कर उसे सांप्रदायिक बनाने की कोशिश कितनी उचित है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय हो या अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, इनके नाम से ही सांप्रदायिक होने का भाव झलकता है। जब उच्च शिक्षण संस्थानों का इस प्रकार के सांप्रदायिक रूप से विभाजन किया जा सकता है तो समाज की क्या स्थिति होगी? ये शिक्षण संस्थान महज शिक्षण के केंद्र न होकर नागरिक समाज की आधारशिला वालेए बेहतर भारतीय नागरिक तैयार करने वाले लोकतंत्र के अनिवार्य अंग हैं। उपन्यास के मुख्य पात्र जमील को प्रो. चतुर्वेदी द्वारा यह कहना कि- ष्तुम समाचार-पत्र देखते रहो। कभी शिब्ली कॉलेजए आजमगढ़ए हलीम कॉलेजए कानपुर या फिर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में जगह निकले तो अवश्य आवेदन करना। उस समय मैं जितनी सहायता कर सकूंगाए करूंगा।ष[1] जमील जो कि हिंदी और संस्कृत से पढ़ाई करता है और उसे यह सलाह दी जाती है कि वह आजमगढ़ या अलीगढ़ में जाकर पढ़े। उच्च शिक्षा में जब इस प्रकार की स्थिति है तो माध्यमिक स्तर पर हालात कैसे होंगे यह अकल्पनीय है।

मुस्लिम समाज को अपने उत्थान के लिए सरकार से गुजारिश करनी पड़ती है। ऐसा लगता है वे इस लोकतंत्र का हिस्सा ही नहीं है और सरकार की उनके प्रति कोई जिम्मेदारी ही नहीं है। मुस्लिम वोट बैंक बनाने के लिए सरकार कुछ योजनाएं बनाती भी है तो वह कागजों तक ही सीमित रह जाती हैं। अगर कोई मुसलमान स्कूल खोजना चाहते तो यहां

[1] बिस्मिल्लाहए अब्दुलए अपवित्र आख्यानए पृष्ठ सं.-28.29

भी मुसलमान नाम से परहेज है। इस नाम से सांप्रदायिकता की बू आने लगती है। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में रहते हुए भी मुस्लिम नाम से मान्यता पाने में असफल होने के बाद मजबूरन यही करना पड़ता है- ष्मौलवी फैयाजुद्दीन मिडिल स्कूल से बदलकर ष्महात्मा गांधी मिडिल स्कूलष कर दिया। जाहिर है, नाम इतना सेकुलर था कि थोड़ी बहुत भाग-दौड़ और थोड़ी-बहुत रिश्वत के बाद ही मान्यता मिल गयी।ष[2] एक धर्म निरपेक्ष देश में अल्पसंख्यकों के साथ हो रहे भेदभाव एक कमजोर व पिछड़े लोकतंत्र की ओर इशारा करते हैं।

समाज में सदियों से चली आ रही असमानता को दूर करने के लिए और लोकतंत्र में सभी को समान अवसर प्रदान करने के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। किंतु आरक्षण की इस व्यवस्था में मुस्लिम समुदायों में उपस्थित दलित मुसलमान इससे बाहर हैं। इस संबंध में संविधान (अनुसूचित जाति) आदेशए 1950 की यह उक्ति महत्वपूर्ण हो जाती है- ष्कोई भी व्यक्ति जो हिंदूए सिख या बौद्ध धर्म से अलग धर्म मानता हो उसको अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जाएगा।ष[3] 1950 में पारित किए गए मूल आदेश के अनुसार केवल हिंदू-जाति समूह की अनुसूचित जाति की सूची में शामिल किए जाने के पात्र थे। किंतु बाद में कुछ अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को भी शामिल किया गया। इन सबके बावजूद मुस्लिम समाज के भीतर मौजूद जातिगत स्तरीकरण को नजरअंदाज किया गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था में कोई भी समुदाय सिर्फ अपनी मर्जी या प्रयास से बेहतर या बुरी स्थिति में नहीं पहुंचता बल्कि सरकार की नीतियां भी उसे बेहतर या बुरी स्थिति में पहुंचाने के लिए जिम्मेदार हैं।

उपन्यास में जब इकबाल जमील से पूछता है- ष्हिंदुस्तान का प्राइममिनिस्टर कोई मुसलमान क्या हो सकता हैद्ध वह तो बहुत से हिंदू भी नहीं हो सकते। जैसे हरिजन ऊंचे ओहदों पर उनकी तादाद भी बहुत कम है।

[2] वहीए पृष्ठ सं.-57
[3] रायए धनंजय (सं.)ए स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिए पृष्ठ सं.-72-73

लेकिन उनके लिए कोटा तो हैए और हमारे लिए॰[4] मुस्लिम समाज के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए उनके लोकतांत्रिक अधिकारों को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए।

कोई शिक्षण संस्थान या कोई भी समूह या संस्था जो अपना उत्पाद या विचार लोगों तक पहुंचाना चाहता है तो उसकी सफलता जनमत को अपने पक्ष में मोड़ने के साथ जुड़ी है। आज यह काम मीडिया बखूबी कर रहा है। अगर लोकतंत्र को बचाना है और मीडिया को समाज में सकारात्मक भूमिका निभानी है तो उसका लोकतांत्रीकरण होना चाहिए। यानि उस पर एकाधिकार को रोका जाना चाहिए। आज हिंदी मीडिया व पत्रिकाओं में एक खास वर्ग का प्रतिनिधित्व नजर आता है। उपन्यास ‘अपवित्र आख्यान’ में हम देखते हैं कि प्रो. जानकी प्रसाद ‘कमल’ अपनी पत्रिका के लिए दुकानदारों से विज्ञापन मांगते रहते हैं। पत्रिका को मात्र कमाई का जरिया बनाकर रखते हैं। रामप्रसाद ‘हठी’ मुसलमानों के ऊपर एक विशेषांक निकालना चाहते हैं किंतु उसमें वे उनकी बुनियादी समस्याएं नहीं बल्कि धार्मिक रूप से कट्टरए रूढ़िवादी व असहिष्णु छवि के प्रचार करने की योजना बनाते हैं। ऐसे हालात में मुस्लिम युवा बेरोजगारी की मार से बचने के लिए अपना नाम बदलकर इकबाल अहमद से इकबाल बहादुर राय रखता है। एक ईमानदार पत्रकार होने की सजा उसे अपनी जान गंवाकर देनी पड़ती है। ये कोरी कल्पना नहीं हमारे समाज का ही यथार्थ है। आज भी गौर लंकेश जैसी पत्रकार की हत्या उनकी ईमानदारी के कारण कर दी जाती है।

लेखक न हिंदू होता है न मुसलमान, लेखक सिर्फ लेखक होता है। उसका एक ही धर्म होता है- मानवता। लेखक की संवेदना समाज से जुड़ी होती है इसलिए वह किसी एक वर्ग या संप्रदाय तक नहीं सिमटता है। बुद्धिजीवियोंए शिक्षकों एवं लेखकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समाज के समक्ष इतिहास की सही व्याख्या करते हुए समाज को एकीकृत करने का प्रयास करेंगे। जब समाज में भाषा व धर्म के आधार पर ध्रुवीकरण

[4] बिस्मिल्लाहए अब्दुलए अपवित्र आख्यानए पृष्ठ सं.-39

किया जा रहा है तब लेखकों का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है। आज संस्कृति के नाम पर टकराहट की स्थिति पैदा कर दी गयी है। ऐसी स्थिति में सांप्रदायिक सौहार्द बनाने व साझी संस्कृति के तत्वों को सामने लाने की जरूरत है। जबकि बहुत कम ही लेखक अपना काम ईमानदारी से कर रहे हैं। उपन्यास में यासमीन 'भारतीय मुसलमानों के रीति-रिवाज' नामक पुस्तक लिखती है लेकिन उसमें उन तत्वों का जिक्र करना छोड़ देती है तो हिंदू मुस्लिम दोनों की मिली-जुली संस्कृति के परिणाम होते हैं। राबिया देवी जब यासमीन की पुस्तक पढ़ती है तो उसकी प्रतिक्रिया देखने लायक होती है-

ष्इसमें एक बात तो लिखी ही नहीं हैए राबिया ने किताब पढ़ने के बाद कहा था।

ष्क्याष् जमील ने चौककर पूछा था

यही कि दीवाली की रात मुसलमान औरतें भी चूल्हे के पास और देहरी पर दीया जलाती हैं।ष[5]

यहां पर स्पष्ट हो जाता है कि लेखका ने अपने दायित्व का निर्वहन ईमानदारी से नहीं किया। जबकि इसका खामियाज़ा समाज को भुगतान पड़ता है।

लैंगिक भेदभाव

लिंग के आधार पर किया जाने वाला भेदभाव लैंगिक भेदभाव की श्रेणी में आता है। भारतीय संविधान यह सुनिश्चित करता है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। इसमें धर्मए जातिए लिंग व जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव स्वीकार्य नहीं है। धर्मनिरपेक्ष होने के कारण ये किसी भी धार्मिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करता है और धर्म के प्रचार-प्रसार व उसके आचरण की स्वतंत्रता प्रदान करता है। धार्मिक स्वतंत्रता का यह प्रावधान संविधान द्वारा स्त्री को प्रदान की गयी स्वतंत्रता व समानता को काफी कुछ छीन लेता है। परिवार तथा वैयक्तिक कानूनों का मूल धार्मिक संहिताएं ही हैं जिसमें स्त्रियों को

[5] बिस्मिल्लाहए अब्दुलए अपवित्र आख्यानए पृष्ठ सं.-103

अधिकारों से वंचित रखा गया है। कानून के इसी लचीलेपन का फायदा उठाकर स्त्रियों के साथ समाज में भेदभाव किया जाता रहा है।

समाज में पुरुष तंत्र और धर्मतंत्र का गठजोड़ देखने को मिलता है। एक कानून के तहत स्त्रियों को बचाया जाता है तो दूसरे कानून के तहत पुनः बंधन में डाल दिया जाता है। एक गणतांत्रिक राष्ट्र में धार्मिक कानून के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता व अधिकार छीना जाता है। यह कैसा गणतंत्र है जहां पर एक तरफ संविधान सबसे के लिए समान होने की घोषणा करता है तो दूसरी ओर धार्मिक कानून के नाम पर असमानता बरनते की छूट दे दी जाती है६ जहां हिंदू कानून में स्त्री-पुरुष के बीच वैषम्य धीरे-धीरे कम हुआ है वहीं मुस्लिम कानून में स्त्री अधिकारों पर अभी भी प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है। ष्अपवित्र आख्यानष् उपन्यास में जब यासमीन नकाब पहनती है तो जमील उससे पूछता है- ष्यासमीनए तुम नकाब ओढ़ती होघ्ष्[6]

तब यासमीन कहती है कि ष्हिंदी पढ़ने का यह मतलब नहीं होता कि आदमी अपनी तहजीब भुला दे।ष्[7] धर्म की घुट्टी समाज में स्त्रियों को इस प्रकार पिला दी गयी है कि उनको पराधीनता का एहसास ही नहीं होता बल्कि वे उसे अपनी संस्कृति का ही हिस्सा मानने लगती है।

ष्वे दोनों पहली बार साथ-साथ रिक्शे पर बैठे थे।ष्[8] ये ष्अपवित्र आख्यानष् उपन्यास की शुरूआती पंक्ति है। इससे ही समाज में इंसान को लिंग के आधार पर विभाजित करने और विषमता बनाए रखने की मानसिकता जाहिर होती है। आज इक्कीसवीं सदी में भी लड़का-लड़की भले ही वयस्क होंए कितने अच्छे मित्र होंए विश्वसनीय हों उनका एक साथ बैठनाए बात करना समाज को स्वीकार्य नहीं है। इसके पीछे समाज में स्त्रियों को उनके अधिकारों व निर्णयों पर पुरुषों का अधिकार बनाए रखने की मंशा शामिल है। राजनीतिक रूप से भले ही उन्हें समानता मिल गयी हो किंतु सामाजिक रूप से उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता

[6] बिस्मिल्लाहए अब्दुलए अपवित्र आख्यानए पृष्ठ सं.-9
[7] वहीए पृष्ठ सं.-9
[8] वहीए पृष्ठ सं.-9

नहीं मिल पायी है। आज भी समाज में संस्कृति के नाम पर कई अराजक दल मौजूद हैं जो लड़के-लड़कियों का साथ बैठना नहीं देख पाते हैं। इन दलों को कहीं न कहीं राजनैतिक शह भी प्राप्त होता है। इसके पीछे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ ही समाज में धर्म और जाति के बंधनों को मजबूती से बनाए रखने की मंशा शामिल है।

स्त्री के प्रति समाज में अभी भी नजरिया बहुत नहीं बदला है। पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री देह को यौन-सामग्री के रूप में देखा जाता है। पुरुष की पहचान तो उसके कर्म के आधार पर की जाती है किंतु स्त्री की पहचान उसकी बनावट व सुंदरता के आधार पर। ये किसी बर्बर या असभ्य समाज की नहीं बल्कि सुशिक्षित व सभ्य कहे जाने वाले समाज का सच है। साहित्यकारों को सामान्य मनुष्य की अपेक्षा अधिक तार्किक व संवेदनशील माना जाता है। यदि यही समाज स्त्रियों को मात्र यौन-सामग्री के रूप में देखता है तब स्थिति शोचनीय हो जाती है। ष्अपवित्र आख्यानष उपन्यास में जब यासमीन सिल्क की हरी साड़ी और मैच करता हुआ ब्लाउज पहनेए दाहिने हाथ में एक मोटी सी डायरी लिए काव्य गोष्ठी में पहुंचती हैं तो सभी साहित्यकार यासमीन को घेरकर बैठ जाते हैं ष्जैसे चीनी के एक दाने के इर्द-गिर्द चींटों-चीटियों की फौज इकट्ठा हो जाती है।ष[9] गोष्ठी समात होने के पश्चात प्रो. जानकी प्रसाद ष्कमलष ;जो कि कविए संपादक व शिक्षक होते हैं) का कथन स्त्रियों के प्रति उनकी सोच को जाहिर करती है। प्रो. ष्कमलष कहते हैं- ष्भई कुंज! तुम्हारा भी कोई जवाब नहीं! क्या लौंडिया फंसी हैष्[10] ये कथन पुरुषतंत्रात्मक समाज की मानसिकता को स्पष्ट करने के लिए काफी है जहां स्त्रियों को मात्र उपभोग की वस्तु समझा जाता है।

दुनिया में सबसे अधिक बाल विवाह उन्हीं देशों में होते हैं जो देश पिछड़े हुए और बर्बर हैं। जहां अशिक्षा और गरीबी है। भारतीय समाज में भी बाल-विवाह स्वतंत्रता पूर्व से एक सामाजिक बुराई के रूप में मौजूद है। बाल विवाह रोकने संबंधी कानून भी बने हैं किंतु अभी भी बाल विवाह ग्रामीण भारत के कुछ हिस्सों सहित शहरों में भी अपने अवशेष छिपाए हुए हैं। लड़की की शादी को माता-पिता द्वारा एक बोझ समझनाए अशिक्षाए

[9] वही, पृष्ठ सं.-43
[10] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृष्ठ सं.-44

रूढ़िवादिताए अंधविश्वास व निम्न आर्थिक स्थिति आदि के कारण ही बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराई अभी भी समाज में बनी हुई है। उपन्यास ष्अपवित्र आख्यानष के मुख्य पात्र जमील की शादी की एक नाबालिग लड़की के साथ तय होती है किंतु जमील शिक्षित व जागरूक होने के कारण शादी से इनकार कर देता है। जमील के बारे में लेखक स्वयं से विवरण देता है- ष्वैसे उसके परिवार वाले तो उसकी शादी ग्यारह-बाहर साल की ऐसी लड़की से करना चाहते थेए जिसने ष्बड़ी-चीजष ;कुरआन शरीफ) के अलावा कुछ भी नहीं पढ़ रखा थाए मगर उस शादी से जमील ने साफ इनकार कर दिया था।ष[11]

बाल विवाह रोकने के प्रयास तो आजादी के पहले से ही शुरू हो गए थे। राजाराम मोहन राय व केशवचंद सेन ने ब्रिटिश सरकार द्वारा बिल पास करवाया था जिसे ैच्वमबपंस डंततपंहम ।बजश कहा जाता है। इसमें लड़कों की उम्र 18 वर्ष एवं लड़कियों की उम्र 14 वर्ष की किंतुत बाद में संशोधित होकर क्रमशः 21 वर्ष व 18 वर्ष कर दी गयी। बाल विवाह निषेध अधिनियम अभी अस्तित्व में है। ष्ये अधिनियम बाल विवाह को आंशिक रूप से सीमित करने के स्थान पर इसे सख्ती से प्रतिबंधित करता है। इस कानून के अंतर्गत बच्चे अपनी इच्छा से व्यस्तक होने के दो साल के अंदर अपने बाल-विवाह को अवैध घोषित कर सकते हैं। किंतु ये कानून मुस्लिमों पर नहीं लागू होता जो इस कानून की सबसे बड़ी कमी है।ष[12] इस प्रकार की सामाजिक कुप्रथा को धर्म के नाम पर छूट देना कहीं न कहीं स्त्रियों के अधिकारों को सीमित करता है।

दहेज हमारे समाज का एक ऐसा अभिशाप है जो प्राचीन समय से अब तक हमारे समाज में मौजूद है। भारत में आज भी यह समस्या अपने विकराल रूप में विद्यमान हैं। विवाह के समय वधू अपने पिता के घर से पति के घर जो सामान या संपत्ति लेकर जाती है वह दहेज कहलाता है। यह प्रथा गांव और शहर दोनों जगह विद्यमान है। समाज में अक्सर यह देखा जाता है कि लड़के की हैसियत के आधार पर लड़की के घरवालों से दहेज की

[11] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृष्ठ सं.-99
[12] बाल विवाह- विकिपीडिया, https://hi.m.wikipedia.org/wiki/

मांग की जाती है। कहीं न कहीं दहेज के माध्यम से पुरुषतंत्रात्मक समाज स्त्री की हैसियत को पुरुष की तुलना में कमतर बनाए रखने के लिए भी यह प्रथा बनाए हुए है।

लेखिका तसलीमा नसरीन का मानना है- ष्प्राचीनकाल में दहेज एकतरफा नहीं थाए वधू की तरफ से वर को दिया जाता था और वर की तरफ से वधू के परिवार को दहेज देने का कारण यह था कि उस परिवार के एक श्रमिक के कम हो जाने पर क्षतिपूर्ति करना और वधू के परिवार के वर के परिवार को जो दहेज दिया जाता था वह मूलरूप से पिता का संपत्ति से उत्तराधिकार स्वरूप उसे जो मिलना था वह। उस समय का कानून कन्या को उत्तराधिकार से वंचित कर देता था।ष[13] समाज में दहेज के नाम पर उत्पीड़न की घटनाएंए आत्महत्याएं अभी भी कम नहीं हुई हैं। यह कुप्रथा गांव-शहरए शिक्षित-अशिक्षित के साथ-साथ हिंदू व मुस्लिम दोनों समुदायों में है। उपन्यास ष्अपवित्र आख्यानष् में जमील जब हिंदू वृद्ध से बात करते हुए उन्हें बताता है कि मुसलमानों के यहां भी दहेज का लेन-देन होता हैए तब वे कहते हैं- ष्तब भइया काहे का हिंदू-मुसलमानष्

अरे भइयाए ई जमाना मां सबसे बड़ी समसिया बा बिटिया का बियाह।

अउर जस भइया कहिनए ई समसिया दूनौ जगे है।ष[14] इस प्रकार की समस्याएं हमारे समाज के लिए कलंक हैं। अतः इसके लिए सख्त कानून बनाने चाहिए और समाज को भी इसके खिलाफ एकजुट होकर समाप्त करने के लिए आगे आना होगा।

लैंगिक भेदभाव सिर्फ स्त्रियों के साथ ही नहीं होता हैए पुरुषों के साथ भी होता है। शिक्षा जगत के साथ-साथ आज अन्य सभी क्षेत्रों में भी स्त्रियां पुरुषों की बराबरी कर रही हैं और उससे बेहतर परिणाम भी ला रही हैं। किंतु स्त्री-पुरुष को समान अवसर प्राप्त होने के बावजूद योग्यता के आधार पर मूल्यांकन न करके लिंग के आधार पर चयन को मानदंड बना लिया जाता है ऐसी स्थिति में चयन-प्रक्रिया के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था पर भी प्रश्न उठना लाजिमी है। यहां पर लैंगिक आधार पर प्राप्त आरक्षण नहीं बल्कि साक्षात्कार

[13] नसरीन, तसलीमा, कुछ गद्य, कुछ पद्य, पृष्ठ सं.-190
[14] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृष्ठ सं.-150-151

कर्ताओं द्वारा स्त्रियों को शारीरिक शोषण हेतु चयनित करने के ऊपर प्रश्न उठाया गया है। ष्अपवित्र आख्यानष् में जमील और यासमीन दोनों साक्षात्कार के लिए जाते हैं किंतु जमील का चयन न करके यासमीन का चयन किया जाता हैए कारण चयन समिति के सदस्यों के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है- ष्कन्या सुंदरी तो है नघ

मियाइनें वैसे भी सुंदर होती हैंए क्यों डॉक्साबघष्[15]

इस प्रकार के लैंगिक भेदभाव सभ्य समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। शिक्षा के द्वारा समाज में चेतना विकसित होती है यदि शैक्षिक जगत में ही इस प्रकार की मानसिकता को प्रश्रय मिलता रहा तो समाज अवनति की ओर ही अग्रसर होगा।

संदर्भ सूची –

- बिस्मिल्लाहए अब्दुल.(2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ैठछरू 978.81.267.2193.1
- नसरीनए तसलीमा. (2016). कुछ गद्य कुछ पद्य. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ैठछ रू 978.93.5229.464.0
- रायएधनंजय (सं.).2016. स्वतंत्रयोत्तर भारतीय राजनीति . दिल्ली: अनन्य प्रकाशन . आईएसबीएन : 978-93-85450-30-3

इंटरनेट -

[1] बाल विवाह- विकिपीडिया, ीजजचेरूध्धीपण्उण्पापचमकपंण्वतहध्पापध

[15] वही, पृष्ठ सं.-32